# अध्याय 18

# घाटे की वित्त-व्यवस्था (Deficit Financing)

वर्तमान समय में विभिन्न देशों में सरकारें जनता की भलाई हेतु प्राय: आय से अधिक व्यय करती हैं। जब सरकार करों तथा सार्वजनिक ऋणों से पर्याप्त आय प्राप्त नहीं कर पाती, वह हीनार्थ प्रबन्धन करती है अर्थात् घाटे की वित्त-व्यवस्था का सहारा लेती है। राजकोय आय प्रबन्ध में घाटे की वित्त-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विशेषतया विकासशील देशों में इस वित्त-व्यवस्था को अधिक महत्त्व देते हैं। घाटे की वित्त-व्यवस्था का विचार वर्तमान शताब्दी की देन है। प्राचीन अर्थशास्त्री घाटे की वित्त-व्यवस्था के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इससे अधिक असन्तुलन पैदा हो जाता है किन्तु तीसा की महान आर्थिक मन्दी ने इस मान्यता को समाप्त कर दिया। **प्रो० कीन्स** प्रथम अर्थशास्त्र थे, जिन्होंने मन्दी का मुकाबला करने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था का समर्थन किया। उनका कहना था कि मन्दीकाल में इस व्यवस्था को अपनाकर प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि की जा सकती है, जिसके फलस्वरूप उत्पादन एवं रोजगार स्तर में सुधार लाया जा सकता है। अत: महान मन्दीकाल में अमेरिका जैसे औद्योगिक देश में भी चक्रीय बेरोजगारी को दूर करने के लिए इस व्यवस्था का सहारा लिया। इस प्रकार मौलिक रूप से घाटे की वित्त-व्यवस्था का जन्म मन्दीकाल में हुआ। मन्दी के पश्चात् द्वितीय महायुद्ध में व्यय पूर्ति के लिए इस व्यवस्था का प्रयोग किया गया। किन्तु वर्तमान समय में तो अल्प-विकसित देश इस तकनीकी का प्रयोग अपने आर्थिक विकास में तीव्र गति देने के लिए प्रयोग करने लग गये हैं। इस प्रकार विकसित और अविकसित दोनों ही राष्ट्र घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग करते हैं।

## घाटे की वित्त-व्यवस्था का अर्थ (Meaning of Deficit Financing)

साधारणतया जब कभी सरकार का व्यय आय प्राप्ति से अधिक हो जाता है तो सरकार उस घाटे को पूरा करने के लिए जिस व्यवस्था का सहारा लेती है, उसे घाटे की वित्त-व्यवस्था कहते हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार घाटे को पूरा करने के लिए निम्न उपाय कर सकती है—

(i) केन्द्रीय बैंक से ऋण, (ii) जनता से ऋण प्राप्त करना, (iii) विदेशों से ऋण प्राप्त करना, तथा (iv) नयी मुद्रा जारी करना।

'घाटे की वित्त-व्यवस्था' शब्द की व्याख्या के सम्बन्ध में दो विपरीत दृष्टिकोण पाये जाते हैं—पाश्चात्य दृष्टिकोण तथा भारी दृष्टिकोण।

**प्रथम मत** (अमेरिकन दृष्टिकोण)—अधिकांश पश्चिमी देशों में, विशेषकर अमेरिका में बजट घाटे को पूरा करने के लिए जनता से ऋण लेते हैं, अत: संयुक्त राज्य अमेरिका में घाटे की वित्त व्यवस्था को अग्र प्रकार परिभाषित किया गया है—

Scanned with CamScanner

"राजस्व प्राप्तियों (revenue receipts) की तुलना में सरकार द्वारा किए गये व्यय की अधिकता को, जिनमें कि पूँजीगत व्यय भी सम्मिलित हैं, घाटे की वित्त-व्यवस्था कहा जाता है, भले ही उस समय की पूर्ति कर्जों द्वारा उपलब्ध प्राप्तियों से की गई हो।"[1] इस प्रकार अमेरिकी अर्थ में यदि बजट के घाटे की पूर्ति कर्जों द्वारा भी की जाए तो उसे घाटे की वित्त-व्यवस्था ही कहा जाता है। वास्तव में यह बात है कि पश्चिमी देशों में, सरकार यदि चालू आय से अधिक कोई भी खर्च करती है तो उसे घाटे की वित्त-व्यवस्था कहा जाता है।

**द्वितीय मत** (भारतीय दृष्टिकोण)—**भारतीय योजना आयोग** (Indian Planning Commission) ने 'घाटे की वित्त-व्यवस्था' शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है—'घाटे की वित्त-व्यवस्था' शब्द बजट के घाटों द्वारा कुल राष्ट्रीय व्यय में प्रत्यक्ष वृद्धि को प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है, फिर चाहे ये घाटे राजस्व खाते (revenue account) से सम्बन्ध रखते हों अथवा पूंजीगत खाते (capital account) से। ऐसी नीति अपनाने का सार यही होता है कि सरकार अपना व्यय उस आय से अधिक मात्रा में करती है, जोकि उसे करों, सरकारी उद्यमों के लाभों, जनता से प्राप्त कर्जों, जमा धनराशियों (deposits), निधियों (funds) तथा अन्य विविध साधनों के रूप में प्राप्त होती है। **"सरकार बजट के घाटे की पूर्ति या तो अपने संचित शेषों** (accumulated balances) **को काम में लाकर करती है अथवा बैंकों से उधार लेकर और इस प्रकार द्रव्य का निर्माण करके करती है।"**[2] इस परिभाषा से स्पष्ट है कि पश्चिमी देशों के समान भारत में जनता से प्राप्त कर्जों को, जिसमें कि अल्प बचतों की प्राप्तियाँ तथा वाणिज्यिक बैंकों के कर्जे भी सम्मिलित हैं, घाटे की वित्त-व्यवस्था का एक उपाय नहीं माना जाता, बल्कि इन्हें तो सरकार की आय माना जाता है।

## पश्चिम देशों से तुलना (Comparison with Western Countries)

घाटे की वित्त-व्यवस्था की पश्चिमी और भारतीय धारणा के बीच मुख्य अन्तर यह है कि जहाँ **पश्चिमी विचारधारा** के अनुसार घाटे की वित्त-व्यवस्था सरकार की चालू आय पर व्यय की अधिकता को प्रकट करती है और इसके अनुसार बाजार के उधारों को सरकार की चालू आय में सम्मिलित नहीं किया जाता, वह **भारतीय धारणा** (Indian Concept) के अनुसार घाटे की वित्त-व्यवस्था सरकार की चालू प्राप्तियों (current receipts) पर खर्च की अधिकता को प्रकट करती है, किन्तु प्राप्तियों में करों की आय, अन्य राजस्व प्राप्तियों तथा बाजार के लिए उधारों को सम्मिलित किया जाता है।

**पश्चिमी अर्थों में**, बजट के घाटों की पूर्ति बाजार से लिए गये उधारों (market borrowings) से की जाती है। अत: घाटे की वित्त-व्यवस्था की प्रकृति मुद्रास्फीतिजनक नहीं होती, क्योंकि बजट घाटों के लिए वित्त की व्यवस्था जनता की यथार्थ बचतों (genuine savings) से की जाती है। इसके अतिरिक्त, किन्तु **भारतीय अर्थों में,** बजट के घाटों की पूर्ति केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर अर्थात् नई मुद्रा उत्पन्न करके और सरकार के नकद शेषों को कम करके की जाती है। इस प्रकार, इन दोनों ही मामलों में बजट के घाटों को सन्तुलित करने में नई मुद्रा-पूर्ति का आशय लिया जाता है। अत: भारत में घाटे की वित्त-व्यवस्था की प्रकृति मुद्रास्फीतिजनक होती है।

सरल शब्दों में, सरकार की कुल आय की तुलना में सरकारी खर्च की अधिकता को घाटे की वित्त-व्यवस्था कहा जाता है। अत: घाटे की वित्त-व्यवस्था के उपाय को लागू करने का परिणाम होता है, कुल राष्ट्रीय व्यय में निवल वृद्धि इस प्रकार, घाटे की वित्त-व्यवस्था के फलस्वरूप सदा ही सरकारी खर्च में निवल वृद्धि (net increase) होती है। सरल शब्दों मे, यह कहा जाता है कि जब सरकार का व्यय आय से अधिक हो जाता है तो उस घाटे को पूरा करने के लिए जो व्यवस्था अपनायी जाती है, उसे घाटे की वित्त-व्यवस्था कहा जाता है।

---

1 "The excess of expenditure incurred by government including capital expenditure, over revenue receipts, is referred to as deficit financing even if it is covered by the receipts obtained through loans."
—*Dr. K.K. Sharma*, Public Finance, page 32.

2 "The term deficit financing is used to denote the direct addition to gross national expenditure through budget deficits, whether the deficits are on revenue or capital account."
—*Five Year Plans*, page 60.

Scanned with CamScanner

## घाटे की वित्त-व्यवस्था की तकनीक (Techniques of Deficit Financing)

सरकार अपने बजट सम्बन्धी घाटों की वित्त-व्यवस्था निम्नलिखित तीन उपायों द्वारा कर सकती है—

1. केन्द्रीय बैंक से उधार लेकर अर्थात् नई मुद्रा उत्पन्न करके।

2. संचित नकद बकाया (accumulated cash balances) को खातों से निकाल कर। इसका अर्थ है बजट के घाटों को पूरा करने के लिए सरकार के द्वारा केन्द्रीय बैंक से अपनी नकद बाकियों को निकालना, अर्थात् मुद्रा की पूर्ति (supply) में वृद्धि करना।

3. सरकार नई मुद्रा जारी कर सकती है।

स्पष्ट है कि इन तीनों मामलों में बजट के घाटों को सन्तुलित करने में नई मुद्रा का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार आय से अधिक व्यय करना तथा उस घाटे की पूर्ति के लिए नई मुद्रा का सृजन करना ही घाटे की वित्त-व्यवस्था कहलाता है। **आर० एन० त्रिपाठी** के शब्दों में, **"अपने बजट की खाई को पाटने के लिए सरकार द्वारा घाटे की वित्त-व्यवस्था करने का परिणाम मुख्यतः मुद्रा के एकदम विस्तार के रूप में ही सामने आता है।"**[3]

## घाटे की वित्त-व्यवस्था के उद्देश्य (Objectives of Deficit Financing)

(1) **मूल्य स्तर बनाये रखना**—जब सरकार बजट के घाटे को पूरा करने हेतु केन्द्रीय बैंक से ऋण प्राप्त करती है तो बैंक में पड़ी पूँजी सक्रिय हो जाती है और उससे मूल्य स्तर ऊँचा उठने लगता है। मन्दी काल में हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा मूल्य स्तर उठाने में काफी सहायता मिलती है।

(2) **युद्ध-काल में वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति की तकनीकी** (A Method of Meeting the Finanical Needs of the Government)— घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग सामान्यतः युद्ध-काल मे सरकार की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के एक साधन के रूप में किया जाता है, जबकि यह बड़ा कठिन होता है कि साधनों की प्राप्ति के सामान्य उपायों द्वारा युद्ध-व्यय की पूर्ति के लिए पर्याप्त धन प्राप्त कर लिया जाये।

(3) **मन्दी दूर करने का अस्त्र** (Instrument of Removing the Depression)—**प्रो० जे० एम० कीन्स** ने इसे आर्थिक नीति का ऐसा अस्त्र बताया है, जिसके द्वारा मन्दी की दशाओं को दूर किया जा सकता है और पैदावार तथा रोजगार के स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।

(4) **योजनाओं के लिए धन** (Financing of Plans)—घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग आर्थिक विकास की योजनाओं के लिए धन जुटाने की दृष्टि से भी आवश्यक माना जाता है, विशेष रूप से अल्प-विकसित देशों में।

(5) **अप्रयुक्त साधनों का प्रयोग** (Utilizing the Unutilized Resources)—अर्थ-व्यवस्था (economy) में अनावश्यक पड़े हुए प्रयुक्त साधनों को गतिशील करने की दृष्टि से भी घाटे की वित्त-व्यवस्था का समर्थन किया जाता है।

# घाटे की वित्त-व्यवस्था का योगदान (Role of Deficit Financing)

अब इस बात पर विचार करेंगे कि युद्ध-काल में, मन्दी को दूर करने अथवा रोजगार का स्तर ऊँचा उठाने में तथा आर्थिक विकास के काल में घाटे की वित्त-व्यवस्था का क्या योगदान होता है।

### (1) घाटे की वित्त-व्यवस्था और युद्ध (Deficit Financing and War)

मानव जाति द्वारा मौलिक प्रगति करने के साथ युद्ध भी अधिकाधिक महँगे होते जा रहे हैं। इस कारण सरकार के द्वारा अपनी आय के सामान्य स्त्रोतों द्वारा युद्ध-व्यय की पूर्ति कर सकना भी बड़ा कठिन होता जा रहा है। अतः

3 "Thus deficit financing by Government for filling up the gap in its investment budget would result mainly in an outright expansion of currency." —*R. N. Tripathi*, Finance in Under-developed Countries.

Scanned with CamScanner

युद्ध-व्यय की पूर्ति के लिए सरकार घाटे की वित्त-व्यवस्था की आश्रय लेती है। यही सबसे सरल तथा द्रुत तरीका है, जोकि सरकार की क्रय-शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। घाटे की वित्त-व्यवस्था द्वारा सरकार जिन अतिरिक्त साधनों को प्राप्त करती है, उनका उपयोग वेतन तथा मजदूरियाँ देने में और जनता से अन्य अनेक प्रकार की खरीद करने में करती है। परन्तु इससे मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है। कीमतों में वृद्धि इसलिए होती है, क्योंकि एक ओर तो युद्ध सम्बन्धी खरीद के द्वारा अर्थव्यवस्था (economy) में बढ़ी हुई क्रय-शक्ति का प्रवेश हो जाता है और दूसरी ओर जनता से जो साधन (resources) प्राप्त किये जाते हैं, वे अर्थशास्त्र में उत्पादन अथवा उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए गतिशील नहीं किये जाते, बल्कि युद्ध-प्रयत्नों में झोंकने के लिए अर्थात् अनुत्पादक धाराओं में बहाने के लिए प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार, लोगों की कुल क्रय-शक्ति बढ़ जाती है।

लोगों के हाथ क्रय-शक्ति बढ़ जाने का परिणाम यह होता है कि वस्तुओं व सेवाओं की माँग में वृद्धि होने लगती है, परन्तु वस्तुओं व सेवाओं की उपलब्ध पूर्ति कम हो जाती है, क्योंकि काफी मात्रा में वस्तुयें व सेवाएँ आम जनता के लिए उपलब्ध होने की बजाय उन लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा दी जाती हैं, जोकि प्रत्यक्ष रूप से युद्ध-कार्यों में संलग्न होते हैं। अत: युद्ध-काल में घाटे की वित्त-व्यवस्था देश में मुद्रास्फीति सम्बन्धी दबाव उत्पन्न करती है। परन्तु युद्ध के लिए धन प्राप्त करने का चूँकि यह एक महत्त्वपूर्ण तरीका है, अत: युद्ध-वित्त (war finance) में इसको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। परन्तु यहाँ हमें यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि युद्ध के लिए धन प्राप्त करने का यह अन्तिम उपाय ही होना चाहिए, प्रथम उपाय नहीं।

## (2) घाटे की वित्त-व्यवस्था और रोजगार (Deficit Financing and Employment)

कीन्स का विचार था कि किसी निश्चित समय में देश का कुल उत्पादन रोजगार के स्तर पर निर्भर होता है और रोजगार का स्तर निर्भर होता है, समर्थ माँग (effective demand) पर। इसका अर्थ यह है कि समर्थ माँग में वृद्धि करके अर्थात् उपभोग और निवेश की वस्तुओं की माँग में वृद्धि करके बेरोजगारी की दशाओं को दूर किया जा सकता है। समर्थ सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति (marginal propensity to consume) पर निर्भर करती है।

इस प्रकार, सुस्ती अथवा मन्दी के दिनों में विकसित अर्थव्यवस्थाओं के अन्तर्गत समर्थ माँग को बढ़ाने तथा बेरोजगारी की दशाओं को दूर करने के लिए, कीन्स ने घाटे की वित्त-व्यवस्था का समर्थन किया ताकि उससे सार्वजनिक निर्माण की प्रायोजनाओं के लिए धन उपलब्ध हो सके। इससे लोगों के हाथों में क्रय-शक्ति बढ़ जाती है और उसके कारण समर्थ माँग में वृद्धि होती है। आगे चलकर इससे रोजगार में भी वृद्धि होती है, जिसके कारण समर्थ माँग फिर से बढ़ती है तथा समर्थ माँग बढ़ने से रोजगार बढ़ता है और यह सिलसिला बराबर चलता रहता है। कीन्स ने इसे गुणक प्रभाव (multiplier effect) का नाम दिया है। इस प्रकार, मन्दी के काल में घाटे की वित्त-व्यवस्था के द्वारा न केवल समर्थ माँग के घटने की प्रवृत्ति को ही रोक दिया जाता है, बल्कि समर्थ माँग में वृद्धि का निरन्तर जारी रहने वाला सिलसिला भी आरम्भ हो जाता है। इससे रोजगार तथा आय का स्तर ऊँचा उठता है।

गणितीय भाषा में इसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

$$K = \frac{1}{1 - \text{MPC}} = \frac{1}{\text{MPS}}$$

जहाँ, $K$ = गुणक (Multiplier),

MPC = सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume),

MPS = सीमान्त बचत-प्रवृत्ति (Marinal Propensity to Save),

$K$ का सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति से सीधा अनुपाती सम्बन्ध और सीमान्त बचत-प्रवृत्ति से उल्टा अनुपाती सम्बन्ध है।

इसका अर्थ यह है कि मान लीजिये घाटे की वित्त-व्यवस्था के द्वारा सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर 100 करोड़ रु० का निवेश किया जा रहा है। इस स्थिति में यदि $K$ बराबर है 4 के, तो गुणक प्रभाव के कारण आय 400 करोड़ रुपये तक बढ़ जायेगी अर्थात् आय का स्तर अन्ततः मूल अतिरिक्त निवेश का चार गुना ($10 \times 4 = 400$) तक बढ़ जायेगा।

Scanned with CamScanner

परन्तु अल्प-विकसित देशों के बारे में यह बात खरी नहीं उतरती, क्योंकि ऐसे देशों में वे मान्यताएँ (assumptions) नहीं पाई जातीं, जिन पर कि कीन्स का विश्लेषण (analysis) आधारित है। ये मान्यताएँ हैं—

(क) कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में बेकार पड़ी हुई तथा बिना प्रयोग हुई क्षमता विद्यमान हो।

(ख) कार्य-कर पूँजी (Working capital) की प्राप्ति अपेक्षाकृत लोचदार हो। इस प्रकार, अल्प-विकसित देशों में घाटे की वित्त-व्यवस्था बेरोजगारी की दशाओं को दूर करने में सहायक नहीं होती, क्योंकि एक तो वहाँ औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्रों में बेकार पड़ी हुई एवं बिना प्रयोग की गई क्षमता का अभाव होता है और दूसरे, पूँजी-निर्माण व विशेषत: पूँजीगत साज-सज्जा की कमी होती है। इसके अतिरिक्त, औद्योगिक साहस के अभाव, तकनीकी ज्ञान के अभाव, कुछ आधारभूत आर्थिक व सामाजिक सेवाओं (infra-structure) के अभाव तथा बाजार की पूर्णता आदि के अभाव के कारण अल्प-विकसित देशों में गुणक विचारधारा (multiplier concept) कसौटी पर खरी नहीं उतरती।

वास्तव में बात यह है कि कीन्स का गुणक सिद्धान्त समर्थ माँग में तो वृद्धि करता है, किन्तु समर्थ पूर्ति (effective supply) में नहीं और अल्प-विकसित देशों में जो समस्या होती है, वह समर्थ माँग में वृद्धि की उतनी नहीं होती, जितना कि समर्थ पूर्ति में वृद्धि की होती है। अत: स्पष्ट है कि गुणक सिद्धान्त अल्प-विकसित देशों पर लागू नहीं होता।

## (3) घाटे की वित्त-व्यवस्था और आर्थिक विकास

### (Deficit Financing and Economic Development)

अनेक अर्थशास्त्रियों का सुझाव है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था अल्पविकसित देशों में विकास योजनाओं के लिए धन जुटाने का एक बड़ा उपयोगी तरीका है। यही नहीं, ऐसे देशों में विकास परियोजनाओं (development projects) को प्रारम्भ करने के लिए भी इसे अत्यावश्यक माना जाता है, परन्तु इस सम्बन्ध में दो प्रकार के मत प्रकट किये जा रहे हैं—

**सर्वप्रथम,** कुछ लोगों का तो यह विश्वास है कि **अल्प-विकसित देशों के निवेश बजट** (investment budget) **के साधनों की कमी की पूर्ति** घाटे की वित्त-व्यवस्था के एक निरन्तर जारी रहने वाले उपाय के रूप में अपनाकर की जानी चाहिए।

**दूसरे,** कुछ अन्य लोग हैं जिनका विचार है कि **निवेश बजट की खाई को पाटने के लिए** घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग एक अस्थायी विरल उपाय के रूप में ही किया जाना चाहिए।

**प्रथम विचार के समर्थन में** यह कहा जाता है कि यदि घाटे की वित्त-व्यवस्था द्वारा पोषित विकास-व्यय को ऐसी परियोजनाओं पर केन्द्रित किया जाये जोकि विकास के प्रारम्भिक चरणों में ही शीघ्र फल प्रदान कर देती हैं तो उत्पादन में वृद्धि हो जाने के कारण मुद्रा-स्फीतिजनक दबाव थोड़े से समय-अन्तराल (time-lag) में ही समाप्त हो जाते हैं। इसके पणिामस्वरूप असल आमदनियों (real incomes) के स्तर ऊँचे उठ जाते हैं जिनके कारण ऐच्छिक बचतों की मात्रा भी बढ़ जाती है। इससे विकास के अगले चरण में विकास-व्यय की मात्रा बढ़ने की सम्भावना भी निश्चित हो जाती है। **इस विचारधारा में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि अल्प-विकसित देशों में जहाँ कि आय का स्तर अत्यन्त नीचा होता है, सरकार की नीति का उद्देश्य विकास की अधिकतम व्यावसायिक दर को प्राप्त करना होना चाहिए।**[4] अत: सरकार इसको लाभदायक समझ सकती है कि विकास की दर को तेज करने के लिए इस विचारधारा को लागू किया जाये और अर्थ-व्यवस्था पर इसका निरन्तर जोर डाला जाये।

अत: यह तर्क दिया जाता है कि अल्प-विकसित देशों की विकास योजनाओं के लिए धन की प्राप्ति तथा विकास की दर को तेज करने के एक निरन्तर साधन के रूप में घाटे की वित्त-व्यवस्था उस असन्तुलित विकास की तकनीक से मेल खाती है जिसका समर्थन **प्रो० ए० ओ० हिर्शमैन** ने किया है। प्रो० हिर्शमैन इसे आवश्यक मानते हैं कि एक अल्प-विकसित देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए अर्थव्यवस्था में तनावों (tensions) प्रतिलोमानुपातों (disproportions) तथा असन्तुलनों को बनाये रखा जाये और इनको बनाये रखने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था एक

---

4 "This approach has also been emphasized that, in under-developed countries with extremely low level of income, the Government policy must aim at a maximum practicable rate of development."
—*Deficit Financing for Economic Development with special reference to E. C. A. F. E. Countries,* Economic Bulletin for Asia Far East, Vol. 3, Nov. 1954, pp. 1-18.

Scanned with CamScanner

आदर्श साधन है। अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अल्प-विकसित देशों के आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था एक उपयोगी साधन है, बशर्ते कि इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए असन्तुलित विकास या वृद्धि के दृष्टिकोण को उपयुक्त माना जाता हो।

जहाँ तक **दूसरी विचारधारा** का सम्बन्ध है, यह कहा जाता है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग आय और व्यय के बीच की खाई को पाटने के एक अस्थायी एवं कभी-कभी अपनाये जाने वाले उपाय के रूप में ही किया जाना चाहिए, ताकि उससे परिवहन व संचार के साधनों जैसी मूलभूत सेवाओं के विकास के लिए सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। ऐसे उपायों को उन परियोजनाओं की वित्तीय-व्यवस्था के लिए भी उपयुक्त माना जाता है जिनसे देर में प्रतिफल प्राप्त होता है। यदि ऐसी परियोजनाओं के लिए धन जुटाने को घाटे की वित्त-व्यवस्था का निरन्तर आश्रय लिया गया तो इससे अर्थव्यवस्था (economy) में मुद्रा-स्फीतिजनक दबाव इतनी अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जायेंगे कि उन पर नियन्त्रण करना भी कठिन हो सकता है। यह भी कहा जाता है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था को यदि अस्थायी एवं विरल उपाय के रूप में ही अपनाया गया तो अल्पकाल के लिए मुद्रा-स्फीतिजनक दबाव तो तब भी उत्पन्न होंगे, परन्तु इतने दबाव तो सहन कर ही लिए जाने चाहिएँ क्योंकि मूलभूत आर्थिक व सामाजिक सेवाओं (infra-structure) की स्थापना आर्थिक विकास की पूर्व-शर्त होती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था एक ऐसा महत्त्वपूर्ण तरीका है जिसके द्वारा अल्प-विकसित देशों की विकास योजनाओं के लिए धन जुटाया जा सकता है और आर्थिक विकास की गति को तेज किया जा सकता है। परन्तु घाटे की वित्त-व्यवस्था का आश्रय इतनी अधिक मात्रा में नहीं लिया जाना चाहिए कि उसके परिणामस्वरूप होने वाली कीमतों की वृद्धि अर्थव्यवस्था के लिए असहनीय हो जाए और आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के स्थान पर यह विकास की प्रचलित दर को भी खो दे। तथापि, सामान्य मूल्य स्तर में होने वाली 2 से 3 प्रतिशत तक की वृद्धि विकास की दर पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती अपितु वह विकास के लिए सहायक ही सिद्ध होती है। परन्तु कीमतों में होने वाली तीव्र और निरन्तर वृद्धि अल्प-विकसित अर्थव्यवस्थाओं के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। अत: निष्कर्ष यही निकलता है कि विकास योजनाओं के लिए धन जुटाने हेतु घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपाय अल्प-विकसित देशों के लिए उपयोगी तथा आवश्यक तो है, परन्तु इस सम्बन्ध में असन्तुलित विकास के सिद्धान्त (Principle of Unbalanced Growth) के मुकाबले स्थिरता के साथ विकास के सिद्धान्त (Principle of Growth with Stability) को प्रमुखता दी जानी चाहिए।

### (4) घाटे की वित्त-व्यवस्था और फालतू साधनों की गतिशीलता

**(Deficit Financing and Mobilisation of Surplus Resources)**

पूँजी निर्माण (Capital formation) अल्प-विकसित देशों के आर्थिक विकास की एक मूलभूत शर्त होती है। पूँजी-निर्माण की समस्या उन सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है जिसका कि अधिकांश अल्प-विकसित देशों को उस समय सामना करना होता है जबकि वे अपनी विकास योजनाओं को आरम्भ करने का निश्चय करते हैं। इस सम्बन्ध में घाटे की वित्त-व्यवस्था जो योगदान करती है, उसका विवेचन निम्नलिखित तीन दृष्टिकोणों से किया जा सकता है—

(क) उन अप्रयुक्त साधनों (unutilised resources) की गतिशीलता के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था का योगदान जोकि अर्थव्यवस्था (economy) में विद्यमान है।

(ख) जबरी बचतों (forced savings) के रूप में नये साधनों के निर्माण के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था का योगदान।

(ग) जिस समय देश की अर्थव्यवस्था विकास के पथ पर आगे बढ़ रही हो, उस समय साधनों की पूर्ति को बढ़ाने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था का योगदान।

### (5) घाटे की वित्त-व्यवस्था और अप्रयुक्त साधन

**(Deficit Financing and Un-utilized Resources)**

घाटे की वित्त-व्यवस्था बेकार पड़े हुए उन अतिरिक्त संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने में बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती है जोकि अर्थव्यवस्था (Economy) में विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार, घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग उत्पादन

Scanned with CamScanner

तथा रोजगार में वृद्धि के एक साधन के रूप में किया जा सकता है। इसी सन्दर्भ में कीन्स ने भी इस बात का समर्थन किया था कि मन्दी की अवधि में अर्थव्यवस्था के फालतू श्रम तथा अन्य बेकार पड़े हुए साधनों को गतिशील करने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था का उपयोग किया जाये। इस प्रकार, ऐसे साधनों को गतिशील करने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था का भारी महत्त्व है। परन्तु यह बात केवल विकसित देशों के बारे में ही सत्य है।

जहाँ तक अल्प-विकसित देशों का प्रश्न है, कृषि के क्षेत्र (agriculture sector) को वहाँ का सबसे बड़ा क्षेत्र माना जाता है परन्तु वहाँ कोई साज-सज्जा, या संयन्त्र आदि बेकार पड़े हों, ऐसा आमतौर पर नहीं पाया जाता है। इसी प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में भी वहाँ कोई उत्पादन क्षमता बेकार पड़ी हुई दिखाई नहीं देती। हाँ, अल्प-विकसित देशों के ग्रामीण क्षेत्र में बेकार पड़ा हुआ श्रम (unemployed labour) अवश्य बड़ी मात्रा में पाया जाता है। यदि इस बेकार पड़े हुए श्रम को घाटे की वित्त-व्यवस्था के माध्यम से काम पर लगाया जाता है तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी दबाव उत्पन्न होने की पूर्ति रहती है, क्योंकि ऐसे देशों में कृषि तथा गैर-कृषि क्षेत्र में बेकार पड़ी हुई उत्पादन-क्षमता (productive capacity) नहीं पाई जाती। अत: कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन-क्षमता उत्पन्न किये बिना अल्पविकसित देशों को घाटे की वित्त-व्यवस्था अप्रयुक्त साधनों को गतिशील करने की दृष्टि से अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती। तथापि इसका यह मतलब नहीं है कि अल्पविकसित देश अपने फालतू मानवीय साधनों का उपयोग करने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था को बिल्कुल ही न अपनायें। बल्कि इसके विपरीत, वास्तविकता यह है कि मुद्रा-स्फीति की एक हल्की-सी खुराक ऐसे साधनों के उपयोग के लिए एक प्रेरक शक्ति सिद्ध हो सकती है।

## (6) घाटे की वित्त-व्यवस्था और नये साधनों का निर्माण

## (Deficit Financing and Creation of New Resources)

मुद्रा-स्फीति को जन्म देने वाली घाटे की वित्त-व्यवस्था का उद्देश्य यह हो सकता है कि साधनों को जबरी बचतों (forced savings) के रूप में निजी उपयोग से सरकारी उपयोग की ओर स्थानान्तरित किया जाए। घाटे की वित्त-व्यवस्था अर्थात् कीमतों की वृद्धि के कारण उपभोग (consumption) में जो कमी होती है उसके फलस्वरूप साधन (resources) निजी उपयोग से सरकारी उपयोग की ओर को स्थानान्तरित हो जाते हैं। साधनों के ऐसे स्थानान्तरण को ही जबरी बचत कहे जाते हैं।

अल्पविकसित देशों में ऐच्छिक बचतें इतनी पर्याप्त नहीं होतीं कि उनकी विकास योजनाओं के लिए धन जुटा सकें। अत: घाटे की वित्त-व्यवस्था का ही आश्रय लिया जाता है जिसके परिणमस्वरूप कीमतें बढ़ती हैं और बढ़ी हुई कीमतें उपभोग को कम करती हैं। अत: लोगों द्वारा जबरन ही बचतें हो जाती हैं। इस प्रकार, बचतों को गतिशील करने के लिए अर्थात् नये साधनों का निर्माण करने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था को अपनाने की दृढ़ सिफारिश की जाती है। इन बचतों का उपयोग अन्य विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में प्रो० कुरिहारा का कहना है कि **"अल्पविकसित अर्थ-व्यवस्थाओं को इस बात का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए कि वे अपने उत्पादकीय साधनों** (productive resources) **का मुद्रा-स्फीति के किसी भी भय के बिना अधिक से अधिक तीव्र गति से विकास करें।"**[5] **प्रो० डब्ल्यू० ए० ल्यूइस का यह कहना है कि "पूँजी-निर्माण के लिए की गई मुद्रा-स्फीति** (Inflation) **आगे चलकर आत्मघाती सिद्ध होती है।"**[6] **तथापि प्रो० ल्यूइस ने घाटे की वित्त-व्यवस्था को अपनाने के बारे में समर्थन भी व्यक्त किया है, यदि प्रत्येक तीन या चार साल बाद कीमतों में थोड़ी गिरावट लाई जाती रहे।**[7]

---

5 'Under-developed economies should be encouraged to develop their productive resources as repidly as possible without any fear of Inflation."
—*Prof. K. K. Kurihara,* Keynesian Theory of Economic Development, page 152.

6 "Inflation for the purpose of capital formation is in due course self-destructive."
—*Prof. W. A. Lewis,* The Theory of Economic Growth, page 405.

7 "Inflation proves to be self-destructive and if it is punctuated every three four or years by a little deflation of prices."
—Ibid, page 404.

Scanned with CamScanner

## (7) अर्थव्यवस्था के विकास-काल में घाटे की वित्त-व्यवस्था (Deficit Financing when Economy is Developing)

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि अल्प-विकसित अर्थव्यवस्थाओं (underdeveloped economies) में चूँकि लोगों की प्रति व्यक्ति आय कम होती है तथा उपभोग-प्रवृत्ति (propensity to consume) अधिक होती है, अत: वहाँ वित्तीय साधनों की आमतौर पर कमी पाई जाती है। जब तक अल्पविकसित देश विकास के पथ पर चल रहा होता है तो योजनाबद्ध आर्थिक विकास के कारण वहाँ के उत्पादन व रोजगार में वृद्धि होती है और अर्थव्यवस्थाओं पर किसी प्रकार का मुद्रा-स्फीतिजनक दबाव नहीं पड़ता। प्रथम पंचवर्षीय, योजना के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्थाओं की ऐसी ही दशा थी। उस समय अर्थव्यवस्था विकास-पथ पर इस प्रकार आगे बढ़ रही थी कि या तो मुद्रा-स्फीति बिल्कुल नहीं थी अथवा बहुत ही थोड़ी मात्रा में थी। ऐसी परिस्थितियों में घाटे की वित्त-व्यवस्था का योगदान बड़ा भारी महत्त्व रखता है; क्योंकि आर्थिक विकास की बढ़ती दर के साथ कदम मिलाये रखने के लिए यदि मुद्रा की पूर्ति (supply) का विस्तार नहीं किया जाता, तो लगातार मुद्रा अवस्फीति सम्बन्धी दबाव (deflationary pressure) के कारण विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है।

इस सन्दर्भ में यह ठीक ही कहा गया है कि "**हमें यह मानकर नहीं चलना चाहिए कि विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए बैंक-साख** (bank credit) **का निर्माण करने से चूँकि मुद्रा-स्फीति के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है, अत: साख नीति या उधार नीति** (credit policy) **का कोई ठोस या रचनात्मक योगदान नहीं होता। इसके विपरीत, चूँकि अल्पविकसित देशों में वास्तविक साधनों** (real resources) **की कमी होती है, अत: साख निर्माण की नीति ऐसी होनी चाहिए कि जो इस विषय में आश्वस्त करे कि मुद्रा की कमी** (deficiency of money) **विकास के मार्ग को अवरुद्ध नहीं करेगी। साथ ही साथ नीति ऐसी भी होनी चाहिए कि जो इस विषय में आश्वस्त करे कि बैंकिंग प्रणाली द्वारा जो भी साख या उधार उपलब्ध हो, वह उत्पादन को बढ़ाने में अपना अधिकतम सम्भव प्रभाव डाले।"[8] इस बात पर भी जोर दिया गया है कि विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में यदि उचित सीमाओं के अन्दर मुद्रा की पूर्ति का विस्तार किया जाता है तो "**ऐसा विस्तार** (expansion) **निवेश** (investment) **के लिए उपलब्ध होने वाले वास्तविक साधनों में वृद्धि का ही प्रतीक होता है, बशर्ते के मुद्रा-पूर्ति** (money supply) **का विस्तार उससे अधिक न हो जितना कि स्थिर कीमतों में बढ़ी मात्रा के उत्पादन, उपभोग तथा निवेश की वित्तीय व्यवस्था के लिए पर्याप्त होता है। ऐसा करने से केवल मुद्रा-स्फीति ही उत्पन्न नहीं होती अपितु अर्थव्यवस्था के समुचित कार्य-संचालन के लिए ऐसा करना अत्यावश्यक होता है।"[9] इस प्रकार, यदि घाटे की वित्त-वयवस्था को उचित सीमाओं में बाँधकर रखा जाए तो विकासोन्मुख अर्थ-व्यवस्थाओं (developing economies) के विकास की गति को तेज करने यह महत्त्वपूर्ण योगदान करता है। इसके अतिरिक्त, घाटे की वित्त-व्यवस्था ऐसी नहीं होनी चाहिए जो स्वयं बढ़ती रहे, बल्कि ऐसी होनी चाहिए कि जो स्वयंमेव घटती रहे।

---

8 "It must not be assumed that, because the creation of bank credit to finance development plan may lead to inflation, there is no positive or constructive role for appropriate credit policy. On the contrary, because there is deficiency of real resources, credit policy must be alert to ensure that a deficiency of money as distinguished from deficiency of real resources does not further impede development. And it must be alert to ensure that whatever credit is made available through the banking system has the greatest possible effect in increasing production." —*Economic Development with Stability*, IMF Staff papers, page 349.

9 "It has been further emphasized that the expansion of money supply within proper limits in a growing economy represents an increment of real resources for investment so long as the expansion of money supply is no more than enough to finance the larger volume of production, consumption, and investment at stable prices, it is not only inflationary but is essential to the proper functioning of the economy." —*Ibid.*, pp. 352-353.

Scanned with CamScanner

# घाटे की वित्त-व्यवस्था के प्रभाव (Effects of deficit Financing)

घाटे की वित्त-व्यवस्था (deficit financing) अर्थव्यवस्था (economy) को कई प्रकार से प्रभावित कर सकती है। इसके कुछ प्रभावों का विवेचन आगे किया गया है—

**(क) मूल्यों पर प्रभाव** (Effects on Prices)—भारतीय योजना आयोग के अनुसार, घाटे की वित्त-व्यवस्था का अर्थ है, अर्थ-व्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति (money supply) में निवल वृद्धि। इस प्रकार, घाटे की वित्त-व्यवस्था तथा बढ़े हुए सरकारी खर्च के कारण लोगों के हाथों में अतिरिक्त क्रय-शक्ति आ जाती है, इससे मूल्य ऊपर चढ़ने लगते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि केवल सरकार के द्वारा अपनाई जाने वाली घाटे की वित्त-व्यवस्था की मात्रा से ही नहीं होती, अपितु जो नई मुद्रा उत्पन्न होती है, वह बैंकों के साख-निर्माण (credit creation) का आधार बन जाती है। अत: साख-निर्माण के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में उत्पन्न हुई क्रय-शक्ति बजट के घाटे की मात्रा से भी अधिक हो जाती है जिसके कारण मूल्यों पर उनका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक होता है। अत: जब कभी भी घाटे की वित्त-व्यवस्था का आश्रय युद्ध अथवा आर्थिक विकास की प्रायोजनाओं के लिए धन जुटाने के उद्देश्य से लिया जाता है तो हमेशा मुद्रा-स्फीति का खतरा बना रहता है। इस प्रकार घाटे की वित्त-व्यवस्था तथा बैंकों की साख-निर्माण की शक्ति को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाना चाहिए कि मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि न हो, अन्यथा अर्थव्यवस्था पर उनका बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जैसे कि आजकल भारत में हो रहा है।

**(ख) वितरण पर प्रभाव** (Effects on Distribution)—घाटे की वित्त-व्यवस्था के कारण मूल्यों में वृद्धि होती है। मूल्यों में वृद्धि के कारण चूँकि लाभों की मात्रा भी बढ़ने लगती है, अत: इससे उद्यम-कर्त्ताओं को अधिक उत्पादन करने तथा अधिक कमाने को प्रोत्साहन मिलता है। किन्तु बढ़े हुए मूल्यों के कारण लोगों की क्रय-शक्ति घट जाती है। इस प्रकार बढ़े हुए मूल्यों के कारण निश्चित आय वाले वर्ग अर्थात् वेतनभोगी वर्ग की वास्तविक आय तो कम हो जाती है किन्तु उत्पादकों, व्यापारियों तथा व्यावसायिकों की आय बढ़ जाती है। अत: घाटे की वित्त-व्यवस्था आय तथा धन का वितरण उत्पादकों व व्यापारियों जैसे मुनाफाखोर वर्ग के पक्ष में करती है। इस प्रकार, घाटे की वित्त-व्यवस्था अथवा मूल्य-वृद्धि के कारण आय तथा धन के वितरण की असमानताएँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं। इस प्रकार, घाटे की वित्त-व्यवस्था का आश्रय जब बहुत अधिक मात्रा में लिया जाता है तो उसका प्रभाव आय तथा धन का समन्यायपूर्ण वितरण करने, जीवन-स्तर ऊँचा उठाने तथा लोगों के कल्याण में वृद्धि करने के लक्ष्य के विपरीत भी पड़ सकता है।

**घाटे की वित्त-व्यवस्था का उत्पादन पर प्रभाव**—परन्तु यदि घाटे की वित्त-व्यवस्था का आश्रय विकास के लिए धन जुटाने में और इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में किया जाता है तथा जब घाटे की वित्त-व्यवस्था की प्रकृति आत्मनाशी (self-destructive) अर्थात् स्वयं समाप्त होने की होती है तो इसके प्रभाव अधिक हानिकारक नहीं होते हैं। इसके विपरीत घाटे की वित्त-व्यवस्था से प्राप्त अतिरिक्त क्रय-शक्ति (Extra Purchasing Power) का उपयोग युद्ध की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है अथवा सरकारी कर्मचारियों के महँगाई भत्ते (Dearness allowances) के देने में किया जाता है या ऐसे कार्यों में किया जाता है जहाँ कोई उत्पादन नहीं होता या उत्पादन बहुत कम मात्रा में होता है वहाँ घाटे की वित्त-व्यवस्था की प्रकृति (nature) स्वयं बढ़ने की होती है तथा इसके प्रभाव हानिकारक होते हैं। उत्पादन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो आय तथा धन के वितरण पर उसके गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। तथापि इस सम्बन्ध में टिप्पणी करना बड़ा कठिन है कि आय तथा धन के वितरण पर घाटे की वित्त-व्यवस्था में तात्कालिक और अन्तिम प्रभाव क्या होते हैं। इसका कारण यह है कि आय तथा धन का वितरण केवल घाटे की वित्त-व्यवस्था पर ही निर्भर नहीं होता, अपितु घाटे की वित्त-व्यवस्था तथा निवेश की प्रकृति, कराधान नीति तथा सरकारी खर्च आदि पर भी निर्भर होता है।

Scanned with CamScanner

## घाटे की वित्त-व्यवस्था और मुद्रा-स्फीति (Deficit financing and inflation)

घाटे की वित्त-व्यवस्था निम्न दशाओं में मुद्रा-स्फीति पैदा करती है—

1. जब अर्थव्यवस्था में और उत्पादन करने की क्षमता नहीं है तब घाटे की वित्त-व्यवस्था मौद्रिक आय में वृद्धि करेगी, किन्तु उत्पादन में वृद्धि नहीं कर सकेगी—इसके परिणामस्वरूप कीमतों मे वृद्धि हो जायेगी।

2. जब सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया जाता है तथा सरकार बड़ी मात्रा में हीनार्थ प्रबन्धन करती है जिसके कारण बड़ी मात्रा में नयी मौद्रिक आय जनता के हाथों में पहुँचती है—जो वस्तुओं की माँग पैदा करती है—किन्तु वस्तुओ की पूर्ति समस्त माँग को पूरा नहीं कर पाती—जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में वृद्धि हो जाती है अर्थात् मुद्रा-स्फिति की स्थिति पैदा हो जाती है।

3. पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिए की गई घाटे की वित्त-व्यवस्था भी कीमतों में वृद्धि पैदा करती है। क्योंकि पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन मे बहुत समय लगता है—वस्तुओं का उत्पादन तो और भी देर में होता है जबकि बढ़ी हुई मुद्रा माँग तुरन्त उत्पन्न कर देती है; अत: इस दिशा में मुद्रा-स्फीति पैदा हो जाती है अर्थात् कीमतों में वृद्धि हो जाती है।

4. जब सरकार लम्बे समय तक घाटे की वित्त-व्यवस्था करती है तब भी अर्थव्यवस्था में कीमतों के बढ़ने का दुश्चक्र चल पड़ता है जो उत्पादन पर बुरा प्रभाव डालता है।

5. जब सरकार अनुत्पादक कार्यों पर बहुत ही अधिक व्यय करती है तथा इसके लिए धन की व्यवस्था घाटे की वित्त-व्यवस्था से करती है, तक मुद्रा-स्फीति की दशाएँ अवश्य उत्पन्न होती हैं।

6. एक अल्पविकसित देश में साधारण हिनार्थ प्रबन्धन (घाटे की वित्त-व्यवस्था) भी कीमतों में वृद्धि पैदा करने की प्रवृत्ति रखती है क्योंकि उत्पादन (वस्तुओं) की पूर्ति की लोच कम होती है तथा उपभोग की प्रवृत्ति (लोच) ऊँची होती है—इसका परिणाम यह होता है कि कीमतों मे वृद्धि होने लगती है अर्थात् मुद्रा-स्फीति की स्थिति पैदा हो जाती है।

### निम्न दशाओं में घाटे की वित्त-व्यवस्था मुद्रा-स्फीति पैदा नहीं करती–

**यद्यपि घाटे की वित्त-व्यवस्था की प्रवृत्ति कीमतों में वृद्धि करने की होती है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह हमेशा मुद्रा-स्फीति की स्थिति पैदा करे अथवा हमेशा कीमतों में वृद्धि करे। एक विकासशील देश में निम्नलिखित दशाओं में कीमतों में वृद्धि नहीं होती-**

1. जब देश मे मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के साथ वस्तुओं का उत्पादन भी बढ़ता हो—अर्थात् राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती हो।

2. जब अर्थव्यवस्था के एक भाग में मुद्रा का चलन नहीं होता तो अतिरिक्त मुद्रा का चलन उस क्षेत्र की मुद्रा की आवश्यकताओं को पूरा करने के काम आ सकता है। यह अवस्था बहुत पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं में पाई जाती है जहाँ अर्थव्यवस्था के एक भाग में वस्तु का वस्तु से विनिमय होता है।

3. जब घाटे की वित्त-व्यवस्था का सहारा लेकर अर्थव्यवस्था का विकास किया जाता हो और विकास के साथ-साथ देश में बचतों की मात्रा भी बढ़ती हो तो कीमतों में तेजी से बढ़ने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती।

4. जब देश के पास भारी मात्रा में विदेशी विनिमय का स्टाक हो जिससे वह वस्तुओं की कीमतों के बढ़ने पर उन वस्तुओं का आयात करके इनकी कीमतों में स्थिरता ला सके अथवा बढ़ती हुई कीमतों पर काबू कर सके।

5. जब धन ऐसे उत्पादन कार्यों में लगाया जाता है जिनसे वास्वविक उत्पादन शीघ्र प्रारम्भ होने लगता है जैसे कृषि व घरेलू उद्योग-धन्धे (Cottage Industries) तथा मध्यम सिंचाई योजनाएँ, तो मुद्रा-स्फीति की सम्भावनाएँ नहीं रहतीं।

6. अल्प-विकसित देशों में मुद्रा के संचय (hoarding) करने की प्रवृत्ति अधिक होती है जिस सीमा तक मुद्रा के संचय की प्रवृत्ति हीनार्थ प्रबन्धन के प्रभाव को निरस्त करती है उस सीमा तक कीमतों में बढ़ने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती।

इसके अतिरिक्त मुद्रा-स्फीति से बचने के लिए कुछ आवश्यक वस्तुओं पर बल दिया जाना चाहिए—जैसे अनाज व कपड़े इत्यादि के उत्पादन पर—खाद्यान्न का बफर स्टॉक बनाया जाय—वस्तुओं के वितरण पर नियन्त्रण किया जाना चाहिए—राशनिंग की व्यवस्था की जानी चाहिए।

Scanned with CamScanner

## घाटे की वित्त-व्यवस्था की सीमाएँ
## (Limitations of Deficit financing)

घाटे की वित्त-व्यवस्था की सीमा निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है—

**(1) स्फीतिक सम्भावनाएँ**–यदि हीनार्थ प्रबन्धन कम मात्रा में किया जाता है और कीमतों की वृद्धि पर नियन्त्रण किया जाता है जिससे स्फीतिजनक परिस्थितियाँ उत्पन्न न हों तो हीनार्थ प्रबन्धन सुरक्षित समझा जाता है।

**(2) क्रय शक्ति को निष्क्रिय करना**–हीनार्थ प्रबन्धन की सीमा इस बात पर निर्भर करती है कि सरकार ने अतिरिक्त क्रय-शक्ति को निष्क्रिय बनाने के लिए कौन-कौन से उपाय किये हैं। यदि सरकार मूल्य नियन्त्रण और राशनिंग की नीति अपनाती है तो जनता सीमित वस्तुओं का ही प्रयोग करेगी और अतिरिक्त मुद्रा व्यय न हो सकेगी। इसी प्रकार बैंको के नकद कोष की मात्रा को बढ़ाकर भी क्रय-शक्ति को निष्क्रिय किया जा सकता है।

**(3) जनता की मनोवृत्ति**–घाटे की वित्त-व्यवस्था की सीमा का निर्धारण जनता की मनोवृत्ति से लगाया जाता है अर्थात् जनता कहाँ तक त्याग करने को तैयार है। यदि आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल वातावरण बनाकर जनता को कष्ट सहन करने के लिए तैयार किया गया है तो घाटे की वित्त-व्यवस्था अधिक मात्रा में की जा सकती है अन्यथा नहीं।

**(4) अतिरिक्त क्रय-शक्ति को प्राप्त करना**– यदि सरकार करारोपण, बचत आदि की सहायता से धन एकत्रित करने में सफल हो जाए तो वह बड़ी मात्रा में हीनार्थ प्रबन्धन कर सकेगी।

**(5) व्यय की प्रकृति**–उत्पादक कार्यों के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था की अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि वस्तुओं की माँग बढ़ने के साथ-साथ देश में उत्पादन भी बढ़ता जाता है और वस्तुओं की कीमत अधिक नहीं बढ़ पाती है।

**(6) अमौद्रिक अर्थव्यवस्था**–अर्थव्यवसाी का अधिक भाग अमौद्रिक होने पर अधिक मात्रा में हीनार्थ-प्रबन्धन किया जा सकता है क्योंकि जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होगा तो मौद्रिक क्षेत्र बढ़ेगे और मुद्रा की माँग बढ़ेगी। इस प्रकार नयी मुद्रा बिना स्फीतिकारक प्रभाव डाले अर्थव्यवस्था में खप जायेगी।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था की सीमा देश के विकास की आवश्यकता और उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों को नियन्त्रित करने की शक्ति पर निर्भर करती है। यदि उपरोक्त बातों पर ध्यान न दिया गया तो अर्थव्यवस्था अनियन्त्रित हो जायेगी। अत: यह कहा जा सकता है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था का प्रयोग अर्थव्यवस्था के मर्ज में एक दवा के तौर पर करना चाहिए न कि नियमित भोजन के तौर पर।

## भारत में घाटे की वित्त-व्यवस्था
## (Deficit Financing in India)

भारत में योजनाओं के अन्तर्गत घाटे के व्यय को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था का सहारा लिया गया है। इसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

**प्रथम योजना**—घाटे की वित्त-व्यवस्था भारत के लिए कोई नयी वस्तु नहीं है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस नीति को अपनाया गया था, क्योंकि देश के आन्तरिक और बाह्य साधनों से योजना की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती थी।

इस योजना में 290 करोड़ रुपये के घाटे से बजट की व्यवस्था रखी गयी थी परन्तु वास्तव में 232.00 करोड़ रुपये से घाटे की वित्त-व्यवस्था की गई जोकि प्रारम्भिक अनुमान से 22% अधिक थी। इस योजना में घाटे की वित्त-व्यवस्था अनुमान से अधिक होने पर स्फीति प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन नहीं मिला। इसके दो कारण थे—

(i) जलवायु एवं मानसून अनुकूल होने के कारण कृषि पैदावार में पर्याप्त वृद्धि हुई। (ii) स्टर्लिंग शेष के कारण हमें अपने आयात के बदले में उतने ही मूल्य का निर्यात नहीं करना पड़ा।

**द्वितीय योजना**—द्वितीय पंचवर्षीय योजना का निर्माण विनियोग के ऊँचे लक्ष्यों को ध्यान में रखकर किया गया। इस योजना में 1200 करोड़ रुपये के घाटे की वित्त-व्यवस्था का प्रावधान था परन्तु वास्तविक राशि 948.00 करोड़ रुपये रही। यह कुल योजना का 20.4% था। इस योजना में स्फीतिक प्रभाव काफी रहा।

Scanned with CamScanner

**तृतीय योजना**—देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए योजना आयोग ने यह स्वीकार किया कि अधिक मात्रा में घाटे की वित्त-व्यवस्था नहीं की जाए परन्तु फिर भी 550 करोड़ रुपये के घाटे की वित्त-व्यवस्था का लक्ष्य रखा गया। परन्तु वास्तव में 1,133.00 करोड़ के घाटे की वित्त-व्यवस्था की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि कीमतें बढ़ गयीं।

**वार्षिक योजना**—1966-69 की अवधि में तीन वार्षिक योजनाओं में हीनार्थ प्रबन्धन की कुल राशि 732.00 करोड़ रुपये थी।

**चतुर्थ योजना**—प्रथम तीन योजनाओं में 2,303.00 करोड़ रुपये के घाटे की वित्त-व्यवस्था किये जाने के कारण देश की आर्थिक स्थिति मुद्रा-स्फीतिक प्रभावों के कारण काफी खराब हो गई थी। अत: चौथी योजना में 850 करोड़ रुपये से ही हीनार्थ प्रबन्धन करने का लक्ष्य रखा गया। वास्तविक राशि इससे तीन गुना से भी अधिक अर्थात् 3,750 करोड़ रुपये थी।

**पाँचवीं योजना**—पाँचवीं योजना में 53,411 करोड़ रुपये व्यय किये जाने थे जिनमें 37,250 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र और 6,161 करोड़ रुपये निजी क्षेत्र में व्यय हुए। इस योजना में घाटे की वित्त-व्यवस्था की कुल राशि 2,787.00 करोड़ रुपये थी।

**छठी योजना**—छठी योजना में यह निर्धारित किया गया कि हीनार्थ प्रबन्धन पर कम निर्भर रहा जायेगा। इस योजना में घाटे की वित्त-व्यवस्था की राशि 5,000 करोड़ रुपये रखी गई।

**सातवीं योजना**—सातवीं योजना में घाटे की वित्तीय-व्यवस्था की कुल राशि 14,000.00 करोड़ रुपये रखी गई। संक्षेप में विभिन्न वर्षों में भारत में बजट घाटा निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

नीचे दी हुई सारणी 19.1 से स्पष्ट है कि भारत में घाटे की वित्त-व्यवस्था में निरन्तर वृद्धि हुई है—

**सारणी 19.1 : बजट घाटे की प्रकृति**

| वर्ष | राजस्व खाते में घाटा | राजस्व व पूँजीगत में घाटा |
|---|---|---|
| 1991-92 | 16,261 | 6,855 |
| 1992-93 | 18,574 | 12,312 |
| 1993-94 | 32,716 | 10,960 |
| 1994-95 | 31,092 | 961 |
| 1995-96 | 29,731 | 9,807 |
| 1996-97 | 32,654 | 13,184 |
| 1997-98 | 46,449 | -910 |
| 1998-99 | 60,594 | 209 |
| 1999-2000 | 73,533 | 3,470 |
| 2000-2001 | 82,310 | N.A. |
| 2005-2006 | 91,821 | 16,143 |
| 2006-2007 | 84,727 | 8,863 |
| 2009-2010 | 2,53,539 | 2,05,389 |
| 2010-2011 | 3,29,061 | 1,60,241 |
| 2011-2012 | 3,74,972 | 2,46,362 |
| 2012-2013 | 3,50,424 | 1,93,831 |

Scanned with CamScanner

## क्या भारत में घाटे की वित्त-व्यवस्था सुरक्षित सीमा का उल्लंघन कर चुकी है?

**(Has India crossed the safe limit of deficit financing)**

भारत में आगामी वर्षों में घाटे की वित्त-व्यवस्था की ओर अधिक गुँजाइश नहीं है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य दिये जा सकते हैं—

1. देश में सामान्य कीमत स्तर काफी ऊँचा है और इसमें निरन्तर बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

2. मशीन इत्यादि में जो अतिरिक्त उत्पादन शक्ति की गुँजाइश थी उसका पूर्ण उपयोग हो चुका है और अब आगे उधर उत्पादन बढ़ने की गुँजाइश नहीं दिखती है।

3. हीनार्थ प्रबन्धन के कारण जो मुद्रास्फीति उत्पन्न हो जाती है उसको निष्क्रिय बनाने के लिए सरकार के पास पर्याप्त विदेशी विनिमय की मात्रा भी नहीं है।

4. देश में कुशल श्रमिकों का भी अत्यधिक अभाव है जिसके कारण भारी उद्योगों के विकास के बाद भी उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में अत्यधिक समय लगेगा तथा उनकी लागतों में भी वृद्धि होगी।

Scanned with CamScanner